6410

तित्थयर

जैन भवन

चतुर्दश वर्ष : अक्टूबर १९९० : षष्ठ अंक

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १४ : अंक ६
अक्टूबर १९९०

☐

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७

सूची

विभज्जवाद और अनेकान्तवाद १६३
नन्दीसेन १७०
मानव व्यक्तित्व का वर्गीकरण १७५
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १८३
संकलन १८६
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १९१

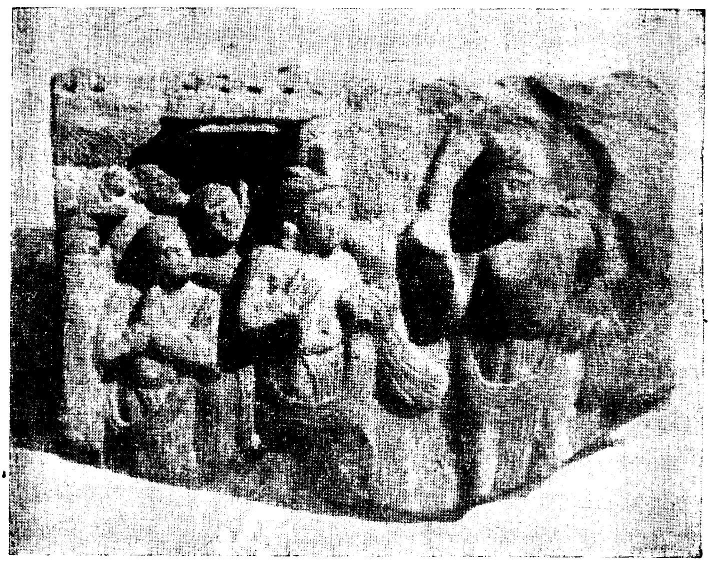

राजाओं को सम्बोधित करते हुए महावीर, कंकाली टीला,
मथुरा, ईसा १म सदी

विभज्जवाद और अनेकान्तवाद

डॉ० भागचन्द्र जैन

सृष्टि का हर सर्जक तत्त्व भिन्न है और वह अपने में विविध रूपों को समाहित किये हुए है। प्रेक्षक और चिन्तक उन रूपों में से कुछ रूपों को देख-समझ पाता है और कुछ अनबुझी पहेली-से अदृश्य और अचिन्तित बने रहते हैं। हर युग में दार्शनिकों ने इस विश्वसत्य को समझा है और उसे अपने दृष्टिकोण से उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। इसी दृष्टिकोण को बुद्ध ने विभज्जवाद कहा और महावीर ने अनेकान्तवाद।

प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। न वह सर्वथा सत् ही है, और न वह सर्वथा असत् ही है। न वह सर्वथा नित्य ही है और न वह सर्वथा अनित्य ही है। किन्तु किसी अपेक्षा से वस्तु सत् है तो किसी अपेक्षा से वस्तु असत् है, किसी अपेक्षा से नित्य है तो किसी अपेक्षा से अनित्य है। अतः सर्वथा सत्, सर्वथा असत्, सर्वथा नित्य, सर्वथा अनित्य आदि प्रकार के एकान्तों का निरसन करके वस्तु का कथञ्चित् नित्य कथञ्चित् अनित्य इत्यादि रूप निर्धारित करना अनेकान्त है। और अनेकान्तात्मक वस्तु के कथन करने का नाम स्याद्वाद है। ये दोनों वाद वस्तु के अनन्तधर्मात्मक स्वरूप का प्रतिपादन मुख्य-गौण भाव से करते हैं। ये दोनों शब्द समानार्थक हैं फिर भी भेद यह है कि अनेकान्तवाद ज्ञान रूप है और स्याद्वाद वचन रूप। दोनों एक दूसरे के परिपूरक हैं।

विभज्जवाद

विभज्जवाद का तात्पर्य है वस्तु-तत्व को विभक्त करके प्रस्तुत करना। भ० बुद्ध ने विवादग्रस्त प्रश्नों का समाधान इसी के माध्यम से किया था। शुभमाणवक ने बुद्ध से प्रश्न किया—क्या गृहस्थ ही न्यायकुशल धर्म (निर्वाण) का आराधक होता है, प्रव्राजत सन्यासी नहीं? बुद्ध ने कहा—मैं यहाँ विभजवादी हूँ, एकंशवादी नहीं। गृही के लिए भी और प्रव्रजित के लिए भी मैं मिथ्या प्रतिपत्ति (झूठा विश्वास) की प्रशंसा नहीं करता। चाहे गृही हो या प्रव्रजित, मिथ्या प्रतिपत्ति के कारण वह न्यायकुशल धर्म का आराधक नहीं होगा। गृही के लिए भी और प्रव्रजित के लिए भी मैं सम्यक् प्रतिपत्ति की प्रशंसा करता हूँ।[1]

---

१ मज्झिमनिकाय, सुभसुत्तन्त।

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि बुद्ध ने एकंशवाद को मिथ्याप्रतिपत्ति और विभज्जवाद को सम्यक् प्रतिपत्ति के रूप में स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट है कि बुद्ध विभंजबाद का प्रयोग पदार्थ के सम्यक् स्वरूप के विवेचन के लिए किया करते थे। उनके अन्य कथनों से पता चलता है कि उन्होंने तत्कालीन प्रचलित दार्शनिक सिद्धान्तों के उत्तर देने के लिए चार प्रकार की विधियां प्रयुक्त की थीं :

(१) एकंस व्याकरणीय
(२) पटिपुच्छा व्याकरणीय
(३) ठापनीय
(४) विभज्ज व्याकरणीय

इन चार प्रकारों में मूल प्रकार दो रहे होंगे—एकंस व्याकरणीय और अनेकंस व्याकरणीय। अनेकंस व्याकरणीय के ही बाद में दो भेद हुए होंगे—विभज्ज व्याकरणीय और ठापनीय। पटिपुच्छा व्याकरणीय विभज्ज व्याकरणीय का ही प्रभेद रहा होगा।

उक्त चार विधियों के अतिरिक्त बुद्ध ने विवादग्रस्त प्रश्नों को अव्याकृत कह दिया। दीघनिकाय में उन्हीं अव्याकृत प्रश्नों को दो भागों में विभाजित किया गया है—एकंस व्याकरणीय और अनेकंस व्याकरणीय—एकंसकापि खो पोट्ठपाद, मया धम्मा देसिता पञ्ञत्ता, अनेकंसिका पि हि खो पोट्ठपाद, मया, धम्मा देसिता। अव्याकृत प्रश्नों को बुद्ध ने अनेकंसिक माना और कहा कि वह न सार्थक हैं, न धर्म उपयोगी हैं, न निर्वेद के लिए हैं और न वैराग्य के लिए हैं—न हे ते पोट्ठपाद अत्थसंहिता, न धम्मसंहिता न आदि ब्रह्मचरियका, न निब्बिदाय, न विरागाय, न निरोधाय, न उपसमाय, न अभिञ्ञाय, न सम्बोधाय, न त निब्बानाय संवत्तन्ति।[१]

यहाँ बुद्ध ने जिन विवादग्रस्त प्रश्नों को 'अनेकंसिक' कहा है, वे प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर एकान्तिक दृष्टि से दिया ही नहीं जा सकता। इस दृष्टि से यह सिद्धान्त अनेकान्तवाद के अधिक समीप है।

बुद्ध ने एक अन्य प्रकार से भी प्रश्नों का समाधान किया था जिसे चतुष्कोटि कहा गया है :

(१) अत्थि
(२) नत्थि

---

[१] दीघनिकाय, पोट्ठपादसुत्त, भाग १, पृ० १५६।

(३) अत्थि च, नत्थि च
(४) नेव अत्थि, न च नत्थि

इस चतुष्कोटि का उपयोग बुद्ध ने अनेक स्थानों पर किया है। उदाहरणतः

(१) छन्नं पुस्सायतनं असेसविरागनिरोधा अत्थि अञ्ञं किञ्चि ति।
(२) छन्नं···नत्थि अञ्ञं किञ्चि ति।
(३) छन्नं···अत्थि च नत्थि च अञ्ञं किञ्चि ति।
(४) छन्नं···नेव अत्थि न न अत्थि च अञ्ञं किञ्चि।

बुद्ध ने तत्व का वर्णन कहीं-कहीं दो शब्दों के माध्यम से भी किया है—संमुतिसच्च और परमत्थसच्च। आत्मा के सिद्धान्त को बुद्ध ने अव्याकृतता से लेकर संमुतिसच्च तक पहुँचाया। "न च सो न च अञ्ञो" जैसे कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध के विभज्जवाद ने पारमार्थिक और व्यावहारिक दृष्टि से पदार्थ के विश्लेषण को प्रारम्भ कर दिया था:

यथा हि अंगसंभारा होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तो नि संमुति॥[३]

इस विवेचन से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बुद्ध मूलतः विभज्जवादी थे और उस विभज्जवाद के उन्होंने क्रमशः निम्नलिखित विभाग किये। दूसरे शब्दों में इसे हम विभज्जवाद की विकासात्मक अवस्थायें कह सकते हैं:

(१) अव्याकृतता वाद
(२) एकंसिक-अनेकंसिक वाद
(३) व्याकरणीय प्रकार
(४) चतुष्कोटि विधा
(५) सच्च प्रकार

जैसे हम शुभमाणवक के प्रसंग में देख चुके हैं, भ० बुद्ध ने परमत्थ सच्च को अधिक महत्व दिया। परमत्थदीपिनी, परमत्थ जोतिका जैसे शब्द भी इसी अर्थ को व्यक्त करते प्रतीत होते हैं। बौद्ध साहित्य में नय, सुनय, दुर्नय शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। ज्ञान के जिन आठ साधनों को भ० बुद्ध ने

---

३ मिलिन्द पञ्ह, २७-३०।

बताया है उसमें एक नय हेतु भी है [४] एक निर्णय विशेष करने के लिए नय की आवश्यकता होती है।[५] सुत्त निपात में कहा है कि संमुतिसच्च श्रमण ब्राह्मणों का सर्व साधारण सिद्धान्त था और परमत्थसच्च को विशेष रूप से उन्होंने साध्य माना था।[६] परमत्थसच्च ही तद लक्खण है।[७]

बाद में बुद्ध ने विभज्जवाद के स्थान पर मध्यममार्ग को अपनाया—सब्बं अत्थीति खो ब्राह्मण अयं एवं अन्तो···सब्बं नत्थीति खो ब्राह्मण अयं दुतियो अन्ता। एते ते ब्राह्मण उभो अन्ते अनुपगम्य मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति अविज्जापच्चअ संखारा।[८] उत्तरकाल में यही मध्यम मार्ग बुद्ध के सिद्धान्तों का पर्यायवाचक बन गया।

अनेकान्तवाद

विभज्जवाद के समान ही अनेकान्तवाद का उद्देश्य रहा है। जैसा हम पहले से देख चुके हैं, अनेकान्तवाद में पदार्थ के स्वरूप पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है। इसी सन्दर्भ में एकान्तिक और अनेकान्तिक तथा एकंस और अनेकंस शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसके प्राचीन रूप को हम बौद्ध साहित्य में खोज सकते हैं।

पार्श्वनाथ परम्परा के अनुयायी सच्चक से बुद्ध ने कहा कि तुम्हारे पूर्व और उत्तर के कथन में परस्पर व्याघात हो रहा है—न खो संधियति पुरिमेन वा पच्छिमं पच्छिमेन व पुरिमं।[९] बुद्ध के शिष्य चित्त गहपति और निगण्ठ नातिपुत्त के बीच हुए विवाद में भी चित्तगहपति ने निगण्ठ नातपुत्त पर यही दोषारोपण किया—सचे पुरिमं सच्चं पच्छिमेन ते मिच्छा, सचे पच्छिमं सच्चं पुरिमेन ते मिच्छा।[१०]

---

४ अनुस्सवेन परम्पराय, इतिकिरियाय, पिटकसंपदाय, भवरूपताय समणोन गुरु, तक्किहेतु, नयहेतु, आकारपरि वितक्केन और दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया —अंगुत्तर निकाय २, पृ० १६१-३। (रोमन)

५ नयेन नेति, संयुत्तनिकाय २, पृ० ५८। अनयेन नियति, दुम्मेधो जातक ४, पृ० २४१।

६ सुत्तनिपात, ६८, २१६।

७ अंगुत्तर अट्ठक, भाग १, पृष्ठ ६५ (रो); कथावत्थु अट्ठकथा, ३४।

८ संयुत्त निकाय।

९ मज्झिमनिकाय, भाग १, पृ० २३२।

१० संयुत्तनिकाय ४, पृ० २९८-९।

इससे यह पता चलता है कि भ० महावीर ने भी भ० बुद्ध के समान मूलतः दो भंगो से विचार किया था—अत्थि और नत्थि। इन्हीं भंगों में स्वात्मविरोध का दोषारोपण लगाया गया। महात्मा बुद्ध के भी भंगों में परस्पर विरोध झलक रहा है पर बुद्ध द्वारा महावीर पर लगाये गये आरोप में जो तीव्रता दिखाई देती है, वह वहाँ नहीं। इसका कारण यह हो सकता है कि महावीर के विचारों में अनेकान्तिक निश्चिति थी और बुद्ध एकान्तिक निश्चय के साथ अपने सिद्धान्तों को प्रस्तुत करते थे। निश्चय के सूचक स्यात् पद का प्रयोग यहाँ अवश्य नहीं मिलता पर उसका प्रयोग उस समय महावीर किया अवश्य करते होंगे।[११] जैसा उत्तर काल में प्रायः देखा जाता है, प्रतिपक्षी दार्शनिक स्यात् में निहित तथ्य की उपेक्षा करते रहे हैं। प्रसिद्ध बौद्धाचार्य बुद्धघोष ने स्वयं अनेकान्तवाद को सस्सतवाद और उच्छेदवाद का मिश्रित रूप कहा है।[१२]

जो भी हो, इतना निश्चत था बुद्ध के समान महावीर ने भी अत्थि-नत्थि रूप में दो भंगों को ही मूलतः स्वीकार किया था। भगवती सूत्र में भी इन्हीं दो भंगों पर विचार किया गया है। गौतम गणधर ने उन्ही का अवलम्बन लेकर तीर्थिकों के प्रश्नों का उत्तर दिया था—णो खलु वयं देवाणुप्पिया, अत्थिभावं नत्थि त्ति वदामो नत्थिभावं अत्थिति वदामो। अम्हे णं देवाणुप्पिया, सब्बं अत्थिभावं अत्थीति वदामो सब्बं नत्थिभावं नत्थीति वदामो।[१३]

बौद्ध साहित्य के ही एक अन्य उदाहरण से यह पता चलता है कि भ० महावीर तीन भंगों का भी उपयोग किया करते थे। उनके शिष्य दीघनख परिब्बाजक का निम्न कथन भ० बुद्ध की आलोचना का विषय बना था :

(१) सब्बं मे खमति
(२) सब्बं मे न खमति
(३) एकच्चं मे खमति, एकच्चं मे न खमति

---

११ चूनराहुलावाद सुत्त (मज्झिमनिकाय) में 'सिया' शब्द का प्रयोग तेजो-धातु के निश्चित भेदों के अर्थ में हुआ है।

१२ मज्झिमनिकाय अठ्ठकथा, भाग २, पृ० ८३१ ; दीघनिकाय अठ्ठकथा, भाग ३, पृ० ९०६।

१३ भगवतीसूत्र ७, १०, ३०४।

वेदों और त्रिपिटक ग्रन्थों में चतुष्कोटियों का उल्लेख आता है पर प्राचीन बौद्ध साहित्य में भगवान महावीर के सिद्धान्तों के साथ उक्त तीन ही भंग दिखाई देते हैं। इसलिए ऐसा लगता है कि भ० महावीर ने मूलतः इन्हीं तीन भंगों को स्वीकार किया होगा। अतः अवक्तव्य का स्थान तीसरा न होकर चौथा ही रहना चाहिए।

जैनाचार्यों ने अनेकान्तवाद पर विशेष चिन्तन किया। उनके चिन्तन का यही सम्बल था। इसलिए जब तृतीय अथवा चतुर्थ भंग के साथ भी एकान्तिक दृष्टि का आक्षेप किया गया तो उन्होंने उससे बचने के लिए सप्त भंगों का सृजन किया। इस सप्तभंगी साधना में हर प्रकार का विरोध और एकान्तिक दृष्टि समाधिस्थ हो जाती है। भगवती सूत्र सूत्रकृतांग पंचास्तिकाय आदि प्राचीन ग्रन्थों में यही विकसित रूप दिखाई देता है। उत्तरकालीन बौद्ध साहित्य में भी इसके संकेत मिलते हैं। थेरगाथा में कहा है—एकंगदस्सी दुम्मेधो सत्तदस्सी च पण्डितो।"[१४] यहाँ सत्तदस्सी के स्थान पर लगता है, सप्तदस्सी पाठ होना चाहिए था। इसे यदि हम सही मानें तो सप्तभंगी का रूप स्पष्ट हो जाता है।

जैनदर्शन ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, निश्चयनय और व्यवहारनय, शुद्धनय और अशुद्धनय, पारमार्थिकनय और व्यावहारिकनय आदि रूप से भी पदार्थ का चिन्तन किया है। परन्तु इनका प्रयोग प्राचीन बौद्ध साहित्य अथवा अन्य जैनेतर साहित्य में नहीं मिलता। संभव है इसे उत्तर काल में नियोजित किया गया हो।

इस विवेचन से हम अनेकान्तवाद के विकास को निम्नलिखित सोपानों में विभक्त कर सकते हैं :

(१) एकंसवाद-अनेकंसवाद
(२) सत-असत्-उभयवाद
(३) चतुर्थभंग-अवक्तव्य
(४) सप्तभंग, और
(५) द्विनय अथवा सप्तनय

तुलना

भ० महावीर और महात्मा बुद्ध का समान उद्देश्य था—पदार्थ-स्वरूप का

---

[१४] थेरगाथा, १०६।

सम्यक् विवेचन करना। बुद्ध के समान महावीर ने भी विभज्जवादी भाषा के प्रयोग को अपेक्षित माना शायद यह समानता इसलिए भी हो कि दोनों महान व्यक्तित्व मूलतः एक ही परम्परा के अनुयायी थे। इसलिए दोनों ही प्राथमिक स्तर में विभज्जवादी हैं। उत्तर काल में बुद्ध का विभज्जवाद जिस ओर भी झुका, उसमें एकान्तिक दृष्टि ही छिपी रही पर महावीर ने उसमें 'स्यात्' जैसे निश्चयवाचक पद को जोड़कर उस दोष से अपने को बचा लिया। इसलिए बुद्ध का विभज्जवाद सीमित और एकान्तिक दिखाई देता है जबकि महावीर का विभज्जवाद असीमित और अनेकान्तिक प्रतीत होता है।

बुद्ध का विभज्जवाद अव्याकृत से चलकर मध्यमप्रतिपदा तक पहुँचा पर महावीर के विभज्जवाद ने सप्तभंगी नय और निक्षेप की यात्रा की। बुद्ध के विभज्जवाद पर उतना अधिक चिन्तन नहीं हो सका जितना महावीर के विभज्जवाद अथवा अनेकान्तवाद पर हुआ। फलतः बुद्ध का विभज्जवाद अनेकान्तवादी होने पर भी एकान्तवाद की ओर अधिक झुका पर महावीर का विभज्जवाद अनेकान्तवाद को ही प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पकड़े रहा। यही कारण है कि "स्याद्वादपदलाञ्छन:" जैसे शब्दों का प्रयोग महावीर के साथ ही हुआ है।

बुद्ध ने आचार और विचार में मध्यममार्ग (मज्झिमपटिपदा) को अपनाया और महावीर ने अनेकान्त शैली का आश्रय लिया। दोनों शैलियों ने अपने-अपने ढंग से उत्तरकाल में विकास किया। दार्शनिक क्षेत्र में दोनों महापुरुषों का यही प्रदेय था।

नन्दीसेन

[जैन कथानक]

नन्दीसेन का संसार में अपना कोई नहीं था। उसे जन्म देने के पश्चात् ही उसकी माँ का देहान्त हो गया था और कुछ दिनों के बाद ही पिता का भी। इसीलिए उसका पालन-पोषण मामा के घर हुआ।

मामा के घर पर भी नन्दीसेन सुखी नहीं था। समस्त दिन उसे हाड़ तोड़ देने वाली खटनी करनी पड़ती एवं ऊपर से सहनी पड़ती ताड़ना, तर्जना और लांछना।

किन्तु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि सारा दोष मामा-मामी का ही था। क्योंकि नन्दीसेन स्वयं भी जड़ एवं बुद्धिहीन था। वह किसी भी कार्य को समुचित रूप से नहीं कर पाता। मामा ने उसे लिखना-पढ़ना सीखने के लिए भी भेजा! किन्तु कुछ दिन व्यतीत भी न हो पाए कि वह वहाँ से भी भाग आया।

सभी प्रकार की ताड़ना एवं लांछना को तो सहन करने का नन्दीसेन अभ्यस्त हो गया था। नहीं होता तो करता भी क्या? किन्तु जब उसे मामा की लड़कियाँ कुत्सित कहकर उसका उपहास करतीं उसकी अन्तरात्मा व्यथा से भर-भर उठती। वास्तव में नन्दीसेन कुत्सित था। जैसा उसका गुण था वैसा ही था उसका रूप भी।

एक दिन समस्त दिन की खटनी करने के पश्चात नन्दीसेन घर के कच्चे आंगन में स्थित वृक्ष के नीचे सो रहा था। उसे कुछ नींद-सी आ गयी थी। तभी अचानक एक अट्टहास के कारण उसकी नींद टूट गयी। उसे ऐसा सुनाई पड़ा जैसे मामा की लड़की किसी से कह रही थी, कौन विवाह करेगा ऐसे काले कुत्सित से?

इस वाक्य ने तीक्ष्ण तीर की भाँति उसके हृदय को बींध डाला। वह काला है, कुत्सित है, इसमें उसका क्या अपराध है?

हठात् नन्दीसेन को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके चारों ओर गहन अन्धकार छा गया। प्रकाश की एक क्षीण रेखा भी उसके जीवन में अवशेष नहीं रही?

अब नन्दीसेन घर पर नहीं रह सका। उद्भ्रान्त मन से वह एक पथ से दूसरे पथ पर भटकने लगा। जब रात पड़ी तो रास्ते के किनारे एक वृक्ष

तले सो रहा। क्या होगा मामा के घर जाकर ? उसका अपना घर नहीं, जिसे वह अपना कह सके ऐसा भी तो कोई नहीं।

सोए-सोए ही नन्दीसेन ने एक स्वप्न देखा। उसे लगा जैसे सूर्योदय हो रहा है और समस्त जगत उसी सूर्योदय के आनन्द में उद्वेलित हो उठा है। पृथ्वी मानो एक अभूतपूर्व आविर्भाव की प्रतीक्षा कर रही है।

नन्दीसेन के पूर्व भव का पुण्य अभी शेष नहीं हुआ था, तभी तो वह ऐसा स्वप्न देख पाया। स्वप्न टूटते ही वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। देखा रात अधिक नहीं थी। पूर्वी आकाश में शुक्र तारा अब भी झिलमिला रहा था।

किन्तु जागने के साथ-साथ ही उसकी व्यथा भी जाग पड़ी। अतः घर लौटने की इच्छा ही नहीं हुयी। आँखों के सम्मुख जो राह थी उसी राह को पकड़कर अज्ञात रूप से आगे बढ़ता गया। शायद यह भी भूल गया कि उसने कौन-सा स्वप्न देखा था।

इसी प्रकार निरन्तर चलते-चलते कितनी ही रातें व्यतीत हो गयीं एवं कितने ही दिन और कब वह राह शेष होकर वन में परिवर्तित हो गयी यह भी वह नहीं जान पाया। इसी भाँति एक वन से दूसरे वन में होते हुए वह पहुँच गया किसी महावन में।

उसी महावन में भटकते हुए नन्दीसेन को सुनाई पड़ा किसी का अमृत-निःस्यन्दी मधुर स्वर। जैसे कोई कह रहा था, 'नन्दीसेन ! तुम क्या चाहते हो ?'

नन्दीसेन चौंक कर वहीं का वहीं खड़ा रह गया। कौन पुकार रहा है उसे इस गहन वन में ? किन्तु चाहे वह कोई भी रहा हो उसकी एक पुकार से नन्दीसेन की समस्त चेतना उसी प्रकार जाग्रत हो पड़ी जैसे सूर्य की प्रथम रश्मियों के स्पर्श से शतदल कमल।

नन्दीसेन आँखें उठाकर ऊपर देखने लगा। उसे दिखाई दिया नीला अन्धकार। किन्तु, नहीं-नहीं, एक क्षण के पश्चात् ही उसने देखा उसी स्वप्न में देखे सूर्योदय को। उसे लगा जैसे एक तेज पुंज श्रमण अपनी आँखों से बहती हुई करुणा की धारा से उसे अभिसिञ्चित करते हुए उसी की ओर निहार रहे हैं।

नन्दीसेन उसी क्षण उनके पैरों पर गिर पड़ा। कहने लगा, 'प्रभो ! मैं कुत्सित हूँ : न मेरे पास मेधा है, न बुद्धि। संसार में मेरे लिए कहीं भी स्थान नहीं है। मैं आपका शरणागत हूँ, मुझे आश्रय दीजिए।'

श्रमण के दिव्य आनन पर हास्य की एक ज्योति उद्भासित हो उठी। उसी अमृत-निःस्यन्दी स्वर में वे कहने लगे, 'वत्स ! कौन कहता है तुम मेधाहीन हो, बुद्धिहीन हो, रूपहीन हो ? बृहस्पति के समान तुम्हारी मेधा है, शुक्र के समान बुद्धि एवं प्रभातकालीन सूर्य के समान है तुम्हारा रूप। संसार में तुम्हारे द्वारा अनेक कार्य सम्पन्न होंगे। मैं तुम्हें आश्रय देता हूँ। अब तुम्हें कोई भय नहीं।'

आवेश के मारे नन्दीसेन का कंठ अवरुद्ध हो गया। वह केवल इतना ही कह पाया, 'प्रभो ! मैं आपका शरणागत हूँ, आपका शरणागत।'

नन्दीसेन के उस बाष्परुद्ध कण्ठ-स्वर के प्रत्युत्तर में पुनः श्रमण का वही अमृत-निःस्यन्दी स्वर सुनाई पड़ा, 'वत्स ! मैं तुम्हें जो कार्य दे रहा हूँ आज से तुम मन वचन काया से उसी कार्य को करो। उसी से तुम्हारा कल्याण होगा।'

इस बात को सुनकर नन्दीसेन पुनः एक बार उनके चरणों में लोट पड़ा। कहने लगा, 'प्रभो ! मैं शरणागत हूँ, शरणागत।'

तदुपरान्त ज्योंही नन्दीसेन उठकर खड़ा हुआ तो देखा कि श्रमण वहाँ नहीं हैं जहाँ वे खड़े थे। किन्तु उनके न रहने पर भी उसे लगा उनकी आँखों से जो करुणा प्रवाहित हुई थी, वह धरती, आकाश एवं समस्त वायुमण्डल में परिव्याप्त हो गई है।

जहाँ श्रमण खड़े थे नन्दीसेन ने उसी स्थान पर खड़े होकर संकल्प किया कि जो कार्य वे मुझे सौंप गए हैं उसे अवश्य ही मन वचन काया से सम्पन्न करूँगा।

उस वन को अतिक्रमण करते हुए नन्दीसेन एक गाँव में आया। गाँव के अन्त में एक उपाश्रय था। नन्दीसेन ने उसी उपाश्रय में आश्रय चाहा। वहाँ के श्रमणों ने उसे आश्रय दिया।

अल्प दिनों में ही नन्दीसेन उस उपाश्रय के सभी साधुओं का प्रिय बन गया। उसकी सेवा से सभी सन्तुष्ट थे।

नन्दीसेन केवल उपाश्रय के साधुओं की ही सेवा नहीं करता बल्कि राह में आते-जाते सभी साधुओं को उपाश्रय में लाता। उनकी सेवा करता। इतना ही नहीं वहाँ के अधिवासियों की भी सेवा में वह निमग्न रहता। अतः सर्वत्र उसकी ख्याति फैल गई। किन्तु जिसकी ख्याति फैल रही थी, उसको

ख्याति की कोई कामना नहीं थी। अतः वह ख्याति को दोनों पाँवों से रौंदता हुआ अक्लान्त भाव से सबकी सेवा में संलग्न था। ऐसा लगता था मानो उस सेवा में वह स्वयं को भी भूल गया था।

अनेक दिनों पश्चात् गाँव में अचानक विसूचिका महामारी फैल गयी। अब तो नन्दीसेन को एक क्षण का अवकाश नहीं। जब लोग गाँव छोड़कर भागने लगे तब नन्दीसेन पीड़ितों के सिरहाने साक्षात् करुणा की मूर्ति की भाँति सदा जाग्रत आँखों को लिए बैठा रहता। दिन पर दिन व्यतीत हो जाते किन्तु वह आहार प्राप्त नहीं कर पाता। रात पर रात बीत जाती किन्तु उसे सोने का भी अवसर नहीं मिलता। फिर भी नन्दीसेन के मुख पर न ही विरक्ति थी और न ही नेत्रों में क्लान्ति। वह अपने व्रत को सार्थक कर रहा है; बस—इसी में वह आनन्दित था, कृतार्थ था।

उन्हीं दिनों में एक दिन ऐसा भी आया जिस दिन नन्दीसेन खाने बैठा, तभी किसी ने खबर दी कि अतिसार से पीड़ित एक वृद्ध श्रमण कई दिनों से राह के किनारे पड़े हुये हैं। उन्हें तुरन्त सम्भालने की आवश्यकता है। नन्दीसेन उसी क्षण खाना छोड़कर श्रमण की सेवा में उपस्थित हुआ।

नन्दीसेन ने श्रमण को जिस स्थिति में पाया उसमें किसी अन्य व्यक्ति का सेवा करना तो दूर, खड़ा रहना भी कष्टप्रद था। किन्तु नन्दीसेन के मन में कोई विकार नहीं आया। उसने तत्क्षण उनकी देह को मालिन्य मुक्त किया। फिर धीरे से बोला, 'प्रभो! मेरे ऊपर भार देकर आप उपाश्रय तक यदि चल सकते हैं तो…'

नन्दीसेन को अपना वाक्य पूरा करने का सुयोग नहीं मिला। वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही वे श्रमण कराहते हुए शीघ्रता से बोले, 'कहाँ है वह हतभागा नन्दीसेन जिसकी इतनी ख्याति सुनी थी? कितने दिनों से यहाँ पड़ा हूँ किन्तु उसकी सूरत तक नहीं दिखाई दी।'

इस बात को सुनकर नन्दीसेन ने सिर झुका लिया। फिर नम्रतापूर्वक बोला, 'ख्याति की बात तो मुझे मालूम नहीं, किन्तु वह हतभागा मैं ही हूँ।'

'तुम! तुम हो! जो कुछ सुना था सब झूठ निकला। तुम तो चाण्डाल हो।'

इतना सुनकर भी नन्दीसेन को क्रोध नहीं आया। उसने श्रमण के पैरों को कसकर पकड़े हुए कहा, 'प्रभो! आप ठीक ही कह रहे हैं। मैं चाण्डाल

ही हूँ, नहीं तो क्या आपको उपाश्रय तक पैदल चलने को कहता। आदेश दीजिए तो मैं आपको गोद में उठाकर उपाश्रय ले चलूँ।'

'तो ले चलो उसी प्रकार।'—श्रमण ने क्रोधावेश में कहा।

श्रमण को गोद में लेकर नन्दीसेन उपाश्रय की ओर चल पड़ा। रास्ता तो बहुत छोटा ही था, किन्तु उसे लग रहा था जैसे वह किसी प्रकार शेष ही नहीं हो रहा है। उसकी आँखों के सामने अन्धकार छाने लगा। मारे भार के हाथ टूटे जा रहे थे। पाँव तो मानो उठ ही नहीं रहे थे। कौन जानता था कि श्रमण के सूखे हाड़ों में इतना भार होगा!

इधर श्रमण भी रह-रहकर जोर से कराह रहे थे और धिक्कार रहे थे नन्दीसेन को कि अब और कितनी दूर है? कितनी दूर है?

जिस मालिन्य से नन्दीसेन ने उनको मुक्त किया था, उसी मालिन्य में वे पुनः लिप्त हो गए। मात्र स्वयं ही नहीं, इस बार उन्होंने लिप्त कर डाला था नन्दीसेन को भी। किन्तु नहीं, नन्दीसेन के मन में कोई भी वस्तु अब विकार पैदा नहीं कर सकती। अक्षुब्ध मन से वह उन्हें लिए चला जा रहा था।

'और कितनी दूर?'

'नहीं, अब अधिक दूर नहीं, सामने ही है उपाश्रय।' नन्दीसेन पूर्ण शक्ति लगाकर पाँव उठाने लगा।

किन्तु यह क्या? कहाँ से बहकर आ रही है समीर में यह सौरभ? अबतक जो गन्ध असह्य थी कहाँ गई वह गन्ध? विस्मित भाव से नन्दीसेन ने सिर उठाया तो सम्मुख पाया उसी प्रभात के सूर्योदय को। वे ही श्रमण अपनी दोनों आँखों से प्रवाहित करुणा की अमल धारा से उसे अभिसिंचित कर रहे हैं।

तभी नन्दीसेन के कानों में दूर से आते संगीत की भाँति बहता हुआ वही अमृत-निःस्यन्दी कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा, 'नन्दीसेन! मैं तुम्हारी सेवा से सन्तुष्ट हुआ। तुम्हारा व्रत सार्थक हुआ। तुम सर्वार्थसिद्ध हुए।'

पुनः वह कण्ठ-स्वर सुनाई नहीं पड़ा, और न ही दिखाई दी वह दिव्य ज्योति। जिस श्रमण को वह अबतक वहन किए हुये था वे अन्तर्हित हो गए। नन्दीसेन अपलक देखता ही रह गया उपाश्रय की ओर।

'प्रभो! मैं शरणागत हूँ, शरणागत।'—कहता-कहता जमीन पर लुढ़क पड़ा नन्दीसेन।

शरीर-संरचना के आधार पर

मानव व्यक्तित्व का वर्गीकरण

(जैन दर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान)

डॉ० त्रिवेणी प्रसाद सिंह

जैन दर्शन में मानव व्यक्तित्व के वर्गीकरण के विभिन्न मानक प्रचलित रहे हैं। इनमें एक मानक शारीरिक संरचना के आधार पर भी है, हालाँकि शारीरिक संरचना के आधार पर भी मानव व्यक्तित्व के वर्गीकरण करने की विभिन्न शैलियाँ प्रचलित हैं, यथा—शरीर की बनावट, शरीर का आकार-प्रकार, लिंग आदि। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों में क्रेत्समर और शेल्डन ने शारीरिक संरचना (विशेष रूप से शरीर के आकार-प्रकार) को ध्यान में रखकर मानव व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया और उस शरीर के आकार-प्रकार का मानव स्वभाव के साथ सह सम्बन्ध खोजने का प्रयत्न किया है। जैन आगम ग्रंथों में शारीरिक आधारों पर मानव व्यक्तित्व के वर्गीकरण के तीन प्रारूप प्रचलित रहे हैं—संहनन, संस्थान और लिंग। यद्यपि जैन दार्शनिकों ने एक मनोवैज्ञानिक के रूप में इन शारीरिक संरचनाओं का स्वभावगत विशेषताओं के साथ सह-सम्बन्ध को स्पष्ट करने का कोई प्रयत्न नहीं किया, फिर भी वे एक धर्म दार्शनिक के रूप में इन शारीरिक संरचनाओं का आध्यात्मिक विकास के साथ सह-सम्बन्ध देखने का प्रयास अवश्य करते हैं। सर्वप्रथम मैं जैनों के संस्थान-सिद्धान्त की चर्चा करना उचित समझूँगा। ये छः प्रकार के हैं—समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, सादि संस्थान, कुब्ज संस्थान, वामन संस्थान और हुंडक संस्थान।

१. समचतुरस्र संस्थान से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण

यह शब्द सम + चतुः + अस्र से बना है। सम का अर्थ है समान, चतुः का अर्थ है चार और अस्र का अर्थ है कोण। पालथी मारकर बैठने पर जिस शरीर के चारों कोण समान हों अर्थात् आसन और कपाल का अन्तर, दोनों जानुओं का अन्तर, वाम स्कन्ध और वाम जानु का अन्तर तथा दाहिना स्कन्ध और दाहिना जानु का अन्तर समान हो, उसे समचतुरस्र संस्थान से युक्त व्यक्ति कहते हैं।

साथ ही जिस शरीर के सम्पूर्ण अवयव ठीक प्रमाण वाले हों, उसे सम-चतुरस्र संस्थान से युक्त व्यक्तित्व कहते हैं।

दूसरे प्रकार से कह सकते हैं कि ऊपर, नीचें और मध्य में कुशल शिल्पी द्वारा बनाये गये समचक्र की तरह समान रूप से शरीर के अवयवों की रचना होना।[१] जैन परम्परा में शलाकापुरुषों की शरीर रचना इसी संस्थान से युक्त होती है।

२. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण

न्यग्रोध वट वृक्ष को कहते हैं। जैसे वट वृक्ष ऊपर फैला हुआ होता है और नीचे भाग में संकुचित होता है, उसी प्रकार जिस संस्थान में नाभि के ऊपर का भाग विस्तारवाला और नीचे का भाग हीन अवयव वाला हो उसे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान कहते हैं। इसकी पुष्टि अकलंकदेव ने भी की है।[२]

३. सादि संस्थान से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण

जिस संस्थान में नाभि से नीचे का भाग पूर्ण और ऊपर का भाग हीन हो, उसे सादि संस्थान कहते हैं।

सादि सेमल (शाल्मली) वृक्ष को कहते हैं। शाल्मली वृक्ष का धड़ (तना) जैसा पुष्ट होता है वैसा ऊपर का भाग नहीं होता।

इसी प्रकार जिस शरीर में नाभि के नीचे का भाग परिपूर्ण और ऊपर का भाग हीन हो, वह सादि संस्थान है।[३]

४. कुब्ज संस्थान से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण

जिस व्यक्ति के छाती, पीठ, पेट आदि अवयव टेढ़े हों लेकिन हाथ, पैर, सिर, गर्दन आदि अवयव ठीक हों, वह कुब्ज संस्थान से युक्त व्यक्तित्व वाला है।

---

१ तत्रोर्ध्वाधोमध्येषु समप्रविभागेन शरीरावयवसन्निवेशव्यवस्थापनं कुशलशिल्पिनिर्वर्तितसमस्थितचक्रवत अवस्थानकरं समचतुरस्र संस्थाननाम।—राजवार्तिक, संपा० महेन्द्रकुमार जैन, पृ० ५७६

२ नाभेरुपरिष्टाद् भूयसो देहसन्निवेशस्याधस्ताच्चाल्पीयसो जनकं न्यग्रोध-परिमण्डलसंस्थाननाम। —वही

३ स्वातिर्वल्मीक; शाल्मलिर्वा: तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य शरीरस्य तत्स्वाति शरीर संस्थानम्। अहो विसालं उवरि सण्णमिदि जं उत्तं होदि। —धवला ६।१, ९-१, ३४।७१।४

राजवार्तिक में पीठ पर पुद्गल पिण्डोंवाले अर्थात् कुबड़ापन वाले व्यक्ति को कुब्ज संस्थान से अभिहित किया गया है।[४]

५. वामन संस्थान से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण

जिस व्यक्ति के छाती, पीठ, पेट आदि अवयव पूर्ण हों, पर हाथ, पैर आदि अवयव छोटे हों, उसे वामन संस्थान कहते हैं।

जैन परम्परा में सभी अंग-उपांगों के छोटा होने वाले व्यक्ति को वामन संस्थान वाला बताया गया है।[५]

६. हुंडक संस्थान से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण

जिस व्यक्ति के शरीर के समस्त अवयय बेढब हों, वह हुंडक संस्थान वाला व्यक्ति है। राजवार्तिक में जिस व्यक्ति के सभी अंग और उपांगों की रचना बेतरतीब, हुंडक की तरह है उसे हुंडक संस्थान वाला व्यक्ति कहा गया है।[६] इस संस्थान से युक्त व्यक्तित्व का उदाहरण हमें अष्टावक्र ऋषि में देखने को मिलता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा शारीरिक संरचना के आधार पर किये गये मानव व्यक्तित्व के वर्गीकरण को हम निम्न प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं :

क्रेत्समर के अनुसार मानव-व्यक्तित्व के चार प्रकार हैं[७]

१. पुष्टकाय (Athletic)
२. कृशकाय (Asthenic)
३. तुंदिल (Pyknic)
४. मिश्रकाय (Dysplastic)

१. पुष्टकाय प्रकार का व्यक्तित्व

पुष्टकाय प्रकार के व्यक्तित्व वाले मानव का शारीरिक गठन अच्छा

---

४ पृष्ठप्रदेशभाविबहुपुद्गलप्रचयविशेषलक्षणस्य निर्वर्तकं कुब्जसंस्थाननाम्।
—राजवार्तिक, पृ० ५७७

५ सर्वाङ्गोपाङ्गह्रस्वव्यवस्थाविशेषकारणं वामनसंस्थाननाम्। —वही

६ सर्वाङ्गोपाङ्गानां हुण्डसंस्थितत्वात्हुण्डसंस्थाननाम। —वही

७ Kretschmer, Physique and Character, New York, Harccoust Brance and Co. 1925,
उद्धृत—व्यक्तित्वमनोविज्ञान, सीताराम आयसवाल, पृ० १६४

होता है। उनमें साहस, निर्भयता एवं सफलता की आकांक्षा प्रधान होती है। इसके साथ ही साथ उसमें क्रियाशीलता अधिक पाई जाती है। ये समाज में आवश्यक समायोजन करने में सफल होते हैं और अपना स्थान भी बना लेते हैं।

२. कृशकाय प्रकार का व्यक्तित्व

कृशकाय प्रकार का व्यक्तित्व वाला व्यक्ति शारीरिक रूप से लम्बा और कृश होता है। वह दूसरों का आलोचक होता है। लेकिन दूसरों द्वारा उसकी आलोचना करने पर उसे बुरा लगता है।

३. तुंदिल प्रकार का व्यक्तित्व

तुंदिल प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के शरीर में तोंद की प्रधानता होती है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले मनुष्य मिलनसार एवं मैत्रीयुक्त होते हैं। ये आरामतलबी और बातचीत में बहुत आनन्द लेने वाले होते हैं। इस कारण तुंदिल प्रकार का व्यक्तित्व लोकप्रिय बन जाता है।

४. मिश्रकाय प्रकार का व्यक्तित्व

मिश्रकाय प्रकार के व्यक्तित्व वाले लोगों में ऊपर वर्णित तीनों प्रकार के गुणों का मिश्रण पाया जाता है। क्रेत्समर का यह मत है कि अधिकतर मानसिक रोगियों के शरीर की बनावट मिश्रक्षाय प्रकार की होती है। अतः इस प्रकार के व्यक्तित्व में सामान्यता की सम्भावना पायी जाती है।

शेल्डन ने व्यक्ति के शरीर की बनावट के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है।[८] ये निम्न हैं :

१. गोलाकार (Endomorphic)
२. आयताकार (Mesomorphic)
३. लम्बाकार (Ectomorphic)

१. गोलाकारिता और व्यक्तित्व (Endomorphic and personality)

जिस शरीर की बनावट गोलाकार होती है, उसकी पाचनक्रिया बहुत अच्छी होती है और उसके समस्त व्यवहार में आराम पसन्दगी पाई जाती है।

---

८ W H. Sheldon, The Varieties of Human Physique, New York, Harper and Brothers, 1940
उद्धृत—व्यक्तित्वमनोविज्ञान, सीताराम जायसवाल, पृ० १६५

इससे प्रभावित व्यक्तित्व में अच्छे भोजन करने की रुचि की प्रधानता, गहरी नींद में सोने की इच्छा, मित्रता बढ़ाने की इच्छा, परिवार के प्रति अधिक लगाव दिखाई पड़ते हैं। शेल्डन ने इस तरह के व्यक्तित्व को विसेरोटोनिया (Viscerotonia) का प्रयोग किया है।

२. आयताकारिता और व्यक्तित्व (Metomorphic and personality)

शेल्डन ने आयताकार शरीर वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व को सोमेटोटोनिया (Somatotonia) शब्द का प्रयोग किया हैं। इससे प्रभावित व्यक्ति के व्यवहार में शारीरिक शक्ति एवं गति की प्रधानता होती है। इस तरह के व्यक्तित्व वाले लोग व्यायाम के प्रेमी और साहसी होते हैं। ये व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्य के प्रति निष्ठावान रहते हैं और अपने लक्ष्य को छोड़कर किसी अन्य वस्तु से प्रेम नहीं करते हैं।

३. लम्बाकारिता और व्यक्तित्व (Ectomorphy and personality)

शेल्डन ने लम्बाकारिता शरीर वाले व्यक्तित्व के लिए सेरोब्रोटोनिया (Cerobrotonia) शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले लोग मानसिक कार्यों में अधिक रुचि लेते हैं अर्थात् अन्य लोगों की तुलना में इनकी बौद्धिक क्षमता अधिक होती है। शारीरिक क्षमता की दृष्टि से इस प्रकार के लोग जल्दी थक जाते हैं। यही कारण है कि इन्हें एकान्त में रहना अधिक प्रिय है। ऐसे लोग मानसिक कार्यों में अधिक लगे रहते हैं तथा इनमें थकान भी जल्दी आ जाती है।

उपर्युक्त वर्गीकरण के सम्बन्ध में उल्लेख है कि किसी भी व्यक्ति में शुद्ध रूप से एक ही प्रकार की बनावट नहीं पाई जाती है। बल्कि कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जिनमें तीनों गुण पाये जाते हैं। लेकिन जिस व्यक्ति में जिस प्रकार की बनावट की अधिकता होती है उसी आधार पर व्यक्ति के शरीर की बनावट का निर्धारण किया गया है

जैन दर्शन में शरीर संरचना के आधार पर समचतुरस्र, न्यग्रोध, सादि, कुब्ज, वामन और हुंडक ऐसे जो छह विभाग किये गए हैं, उनकी क्रेत्समर द्वारा किए गए व्यक्तित्व के चार प्रकार—पुष्टकाय, कृशकाय, तुंदिल और मिश्रकाय से तुलना की जा सकती है।

जैनों का समचतुरस्र शरीर संस्थान, क्रेत्समर के पुष्टकाय प्रकार से तुलनीय है, क्योंकि दोनों के अनुसार यही व्यक्तित्व का ऐसा प्रकार है जिसमें शरीर को पूर्णतया सुसंगठित और सुडौल माना गया है। जैनों के अनुसार

समचतुरस्र संस्थान में शरीर के प्रत्येक अंग अपने समुचित आकार-प्रकार में होते हैं। कोई भी अंग न तो मर्यादा से अधिक लम्बा-चौड़ा होता है और न मोटा और दुबला ही। क्रेत्समर ने भी पुष्टकाय प्रकार के यही लक्षण बताये हैं। सुसंगठित और सुडौल शरीर व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसे जैन दर्शन और आधुनिक मनोविज्ञान दोनों ही स्वीकार करते हैं। जैनों के अनुसार तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि शलाकापुरुष (महापुरुष) समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं। इसका अर्थ यह है कि इनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का एक कारण इनकी शारीरिक संरचना है। क्रेत्समर ने पुष्टकाय प्रकार के व्यक्तित्व में साहस, निर्भयता, सफलता, सामाजिक समायोजन आदि गुणों की जो चर्चा की है वे जैनों के शलाकापुरुषों में भी पाये जाते हैं, इसलिए वे विशिष्ट व्यक्ति माने जाते हैं।

इस प्रकार दोनों ही परम्परायें चाहे एक दूसरे से भिन्न हों, किन्तु दोनों ने सफल व्यक्तित्व के लिए सुडौल और सुगठित शरीर को समानरूप से स्वीकार किया है।

जैनों का न्यग्रोध परिमण्डल शरीर संस्थान किसी सीमा तक क्रेत्समर के कृशकाय प्रकार से तुलनीय हो सकता है। यद्यपि दोनों में यहाँ एक महत्वपूर्ण अन्तर है, वह यह कि कृशकाय प्रकार का व्यक्ति लम्बा और छरहरे बदन का होता है जबकि न्यग्रोध संस्थान वाला व्यक्ति लम्बा होकर भी पूर्णतया छरहरे बदन का नहीं होता है। जैनों के अनुसार न्यग्रोध परिमण्डल वाले व्यक्ति के शरीर का अधोभाग लम्बा और पतला होता है किन्तु उसके शरीर का ऊपरी भाग अर्थात् वक्षस्थल, मुखमण्डल आदि सुगठित होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने स्वभाव की दृष्टि से इसे अन्तर्मुखी और दूसरों का आलोचक बताया है। जैन परम्परा में न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान वाले व्यक्ति के स्वभाव के सम्बन्ध में कोई विशेष सूचना हमें प्राप्त नहीं होती है। वैसे जैनों का न्यग्रोध परिमण्डल शरीरसंस्थान क्रेत्समर के मिश्रकाय प्रकार के अधिक निकट है।

क्रेत्समर का तुंदिल प्रकार का व्यक्ति जैनों के सादि संस्थान से तुलनीय है। जैनों के अनुसार सादि संस्थान से युक्त व्यक्ति के शरीर का नाभि से नीचे का भाग मोटा और ऊपर का भाग हीन होता है। 'धवला' में इस संस्थान की तुलना वल्मीक से की गई है। वल्मीक नीचे से चौड़ा और ऊपर पतला होता है। क्रेत्समर के तुंदिल प्रकार के व्यक्तित्व में हमें यही विशेषता मिलती है। अतः दोनों में बहुत कुछ समानता मानी जा सकती है।

आधुनिक मनोविज्ञान इस प्रकार के व्यक्तित्व को मिलनसार, सामाजिक और आरामपसन्द कहता है। जैनों के अनुसार भी हम इस प्रकार के व्यक्तित्व को बहिर्मुखी कह सकते हैं। बहिर्मुखी का मुख्य लक्षण जैनों ने जो बताया है वह है—'सांसारिक भोगों में आनन्द लेना'। क्रेत्समर ने भी ऐसे व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सामाजिकता और आनन्दप्रियता को स्वीकार किया है। अतः दोनों में बहुत कुछ समानता है।

क्रेत्समर ने जिस मिश्र प्रकार की चर्चा की है वस्तुतः वे किसी सीमा तक न्यग्रोध और सादि संस्थान के ही रूप हैं। क्रेत्समर के अनुसार मिश्रकाय प्रकार में पुष्टकाय और कृशकाय प्रकारों के मिश्रित लक्षण पाये जाते हैं। न्यग्रोध और सादि संस्थान में भी शरीर के आधे भाग को पुष्ट और आधे भाग को हीन मानकर मिश्रित व्यक्तित्व की कल्पना की गई है। मात्र यही नहीं जैनों ने सादि संस्थान और न्यग्रोध संस्थान की जो चर्चा की है वह आनुभविक आधार पर सत्य प्रतीत होती है।

जैनों का वामन संस्थान भी किसी सीमा तक क्रेत्समर के तुंदिल प्रकार के निकट आता है फिर भी दोनों को पूर्णतः समान नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि तुंदिल प्रकार और वामन संस्थान दोनों में व्यक्तित्व को नाटा माना गया है वहाँ जैन परम्परा में वामन को आवश्यक रूप मोटा नहीं माना गया है। वामन संस्थान वाला व्यक्ति नाटा तो होता है किन्तु वह मोटा भी हो, यह आवश्यक नहीं।

जैनों ने कुब्जक और हुंडक संस्थानों की जो चर्चा की है वह यद्यपि क्रेत्समर के व्यक्तित्व के प्रकारों की चर्चा के साथ तुलनीय तो नहीं परन्तु आनुभविक आधार पर सत्य है। आनुभविक आधार पर कुब्जक और हुंडक संस्थान वाले अनेक व्यक्ति उपलब्ध होते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान में यदि इनके स्वभावों के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन किया जाय तो हमें अनेक मनोवैज्ञानिक सत्य प्राप्त हो सकते हैं।

शेल्डन नामक मनोवैज्ञानिक ने शरीर की बनावट के आधार पर व्यक्तित्व को गोलाकार, आयताकार और लम्बाकार रूप में वर्गीकृत किया है। उनके आयताकार व्यक्तित्व के वर्ग की तुलना जैन परम्परा के समचतुरस्र संस्थान से कर सकते हैं। उन्होंने इस प्रकार के शरीर संरचना वाले व्यक्तित्व को उद्यमी और साहसी कहा है; साथ ही उसे बलवान भी माना है। यही गुण हमें जैन परम्परा के समचतुरस्र संस्थान से युक्त व्यक्तित्व में मिलते हैं।

शेल्डन का गोलाकार व्यक्तित्व जैन परम्परा के सादि संस्थान से तुलनीय माना जा सकता है, क्योंकि सादि संस्थान को वल्मीक के आकार का बताया गया है, जो शेल्डन के गोलाकार व्यक्तित्व के समान माना जा सकता है। किसी सीमा तक इस प्रकार की शारीरिक संरचना वाले व्यक्तित्व को जैनों के वामन संस्थान वाले व्यक्तित्व के निकट माना जा सकता है।

शेल्डन ने लम्बाकार शरीर संरचना की जो चर्चा की है वह जैनों के न्यग्रोध संस्थान के निकट कही जा सकती है किन्तु दोनों में अन्तर भी है। क्योंकि इस संस्थान वाले व्यक्ति के नाभि के ऊपर का भाग पुष्ट होता है। लम्बाकार व्यक्तित्व के समरूप कोई भी व्यक्तित्व हमें जैन परम्परा में उपलब्ध नहीं होता है। लम्बाकार व्यक्तित्व में मुखयरूप से लम्बा और पतला दोनों बातें आ जाती हैं ; जबकि जैनों में शरीर के वर्गीकरण में ऐसा कोई संस्थान नहीं है, जो लम्बा और कृश दोनों हो।

जैनों के न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान में शरीर के अधोभाग को कृश और ऊपरी भाग को पुष्ट माना गया है और सादि संस्थान में भी शरीर के अधोभाग को पुष्ट और ऊपरी भाग को कृश माना गया है। अतः दोनों ही शेल्डन के लम्बाकार व्यक्तित्व से भिन्न हैं।

हुंडक और कुब्जक संस्थानों की चर्चा हमें आधुनिक मनोवैज्ञानिक शेल्डन द्वारा की गई वर्गीकरण में नहीं प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि आधुनिक मनोवैज्ञानिक साधारणतया सामान्य व्यक्तियों को ध्यान में रखकर, उनका अध्ययन तथा वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं। अगर इन व्यक्तियों के भी स्वभावों का अध्ययन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया जाय तो बहुत कुछ सत्य प्राप्त हो सकती है।

जहाँ तक 'अष्टावक्र ऋषि' के शारीरिक बनावट और बौद्धिक सामर्थ्य का प्रश्न है, उन्हें तो अपवाद ही मानना होगा।

शरीर-संरचना मानव व्यक्तित्व के लिए एक महत्वपूर्ण तथ्य है। जैन परम्परा के साथ-साथ आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते हैं कि शारीरिक संरचना का प्रभाव व्यक्ति के सामाजिक जीवन पर भी पड़ता है। यद्यपि जैन धर्म में आध्यात्मिक दृष्टि से संस्थान को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है, क्योंकि उनके अनुसार छहों संस्थानों के व्यक्ति निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त कर सकते हैं। शारीरिक संरचना, व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास में तो बाधक नहीं किन्तु व्यावहारिक जीवन का महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

पंचम सर्ग

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के कुरु देश में हस्तिनापुर नामक नगर था। उसके प्रासाद के स्वर्णवर्णीय शिखरों की कलाकृति अनायास उद्गत पीत-पुष्पा वन्यलता-सी लगती थी।

इसके चारों ओर वर्तुलाकार एक परिखा थी जिसके स्वच्छ और निर्मल जल में नगर प्राकार दर्पण की भाँति प्रतिबिम्बित होता था। नगर के उद्यान स्थित क्यारियों के निकटवर्ती श्याम वृक्षराजि जल-आहरण के लिये अवतरित मेघ-से लगते थे। नगर की रत्न-जड़ित छतों पर चन्द्रकिरण प्रतिबिम्बित होने से दही के भ्रम में गृह-मार्जार उन्हें चाटने लगतीं। मन्दिरों से निकलती अगुरु की दीर्घ धूम-शिखा खेचर कन्याओं की अनायास ही लज्जा का निवारण करतीं। विपणि श्रेणियों में प्रलम्बित रत्नमालाएँ देखकर ऐसा लगता मानों समस्त उद्धियों से रत्न आहरण कर लिया गया है। हवा में हिलती मन्दिर स्थित पताकाओं की छाया धर्मरूपी सम्पद की रक्षा के लिए नियुक्त अजगरों का भ्रम उत्पन्न करती थीं। प्रतिगृह का गृह-प्रांगण इन्द्रनील मणियों से निर्मित होने के कारण जलपूर्ण क्रीड़ावापी-सा लगता था।

इस नगरी के राजा का नाम था विश्वसेन। इक्ष्वाकु वंश के चन्द्र-से वे सभी के नयनों के आनन्द थे। उनकी कीर्तिरूपी कौमुदी से यह पृथ्वी आलोकित थी। जो उनकी शरण ग्रहण करते उनके लिए वे वज्रगृह रूप थे, याचकों के लिए कल्पतरु तुल्य और श्री एवं वाक् का सौहार्दपूर्ण मिलन-स्थल। उनकी असीम कीर्ति मानो द्वितीय समुद्र ही थी; समुद्र जैसे विशाल नदियों को ग्रास कर लेता है वैसे ही वे शत्रुओं की कीर्तिगाथा का ग्रास कर लेते थे। उनके प्रताप से जब समस्त शत्रु ही दमित हो गये थे तब अस्त्र-शस्त्रों का व्यवहार तो होता ही कैसे? पण्यद्रव्य की भाँति वे आयुधशाला में ही संरक्षित रहते। जो युद्ध चाहता उसके कण्ठ पर वे पैर रखते, जो शरण चाहता उसकी पीठ पर हाथ, मानो दोनों के प्रति ही वे निरपेक्ष थे। युद्ध क्षेत्र में म्यान से निकाली उनकी तलवार आगत विजय श्री का मानों कोष ही थी। नीति उनकी अनुज थी, यश उनकी प्रिया, गुण मित्र और राज्यो-

पाधि भृत्य। अतः उनके सहचर ऐसे लगते मानो देह से ही निर्गत हुए हों। पृथ्वी को आनन्द देने के लिए हीं वे ऊँचे पद पर आसीन थे। मेघ में बिजली-सी अचिरा नामक उनकी पत्नी थी। रमणियों में वह चूड़ामणि थीं, गुणों में भी वैसी ही सच्चरित्रा थी। साध्वी पत्नियों में अग्रगण्या वे बाहर में जैसे मुक्ता-माला को धारण किया जाता है उसी तरह पति को दिन-रात हृदय में धारण किए रहती थी। उनका रूप देखकर लगता था मानो स्वर्ग की देवियों का निर्माण भी उनके निर्माण के पश्चात् अवशिष्ट परमाणुओं से हुआ था। जाह्नवी जैसे पृथ्वी को पवित्र करती है उसी प्रकार पृथ्वी-वन्दिता वे पृथ्वी को पवित्र करती थी। विनय से झुके उनके कन्धों को देखकर लगता मानो सस्नेह वे धरती को देख रही हों कारण वह पृथ्वी उनके स्वामी द्वारा रक्षिता थी। सोमनस वन में विविध वर्ण के फूल जैसे पंक्तिबद्ध भाव से विकसित होते हैं उसी प्रकार रमणियों के समस्त गुण उनमें विकसित हुए थे। विश्वसेन और अचिरा ने इन्द्र और इन्द्राणी की तरह सुख भोग करते हुए दीर्घकाल व्यतीत किया।

अनुत्तर विमान के सर्वश्रेष्ठ स्थान सर्वार्थसिद्धि-से मेघरथ का जीव पूर्णायु भोग कर भाद्र कृष्णा सप्तमी को चन्द्र जब भरणी नक्षत्र में था वहाँ से च्युत होकर रानी अचिरा के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। रात्रि के शेष याम में जब वे सुख-शय्या पर शायीन थीं तब उन्होंने चौदह महास्वप्नों को अपने मुख में प्रवेश करते देखा : मदगन्ध से आकृष्ट भँवरों की गुंजार से मानो उनके मुख में प्रवेश करना चाह रहो हो ऐसा एक श्वेत हस्ती, कैलाश पर्वत की शुभ्रता मानो जीवंत हो उठी हो या समस्त श्वेत कमलों की शुभ्रता को आत्मसात् कर लिया हो ऐसा एक श्वेत वृषभ, जिसकी पूँछ रक्तकमल की कलिका-सी लगती थी, ऐसे ही पूँछ उठाए एक केशरी सिंह, मानो उनकी ही द्वितीय आकृति हो ऐसी हस्तीद्वय द्वारा अभिसिंचित लक्ष्मी, मानो आकाश में इन्द्रधनुष उदित हुआ हो या श्री व आकाश को अलंकृत किया हो ऐसी पंचवर्णीय दिव्य पुष्पमालाएँ, स्वर्ग के दर्पण रूप कौमुदी मण्डित पूर्णचन्द्र, रात्रि को भी जो दिन की तरह उज्ज्वल कर दे ऐसा सहस्रमाली सूर्य, नृत्यरत क्षुद्र पताकाओं की मानो नृत्यशाला हो व दृष्टि के लिए आनन्द-सा नयनाभिराम एक ध्वजदण्ड, विकसित सुरभियुक्त कमलों से जिसका मुख आवृत है ऐसा जलपूर्ण एक कुम्भ, श्री की मानो पीठिका या विकसित कमल का मानो हृद हो ऐसा कमल शोभित जलपूर्ण सरोवर, तरंगरूपी हाथों से आकाश स्थित मेघ

को जो स्पर्श करना चाहता हो ऐसा अनन्त-विस्तृत एक समुद्र, ध्वजाओं से शोभित रत्न-जड़ित स्वर्गीय प्रासाद-सा एक अतुलनीय विमान, देवताओं के निर्माण के लिए रक्षित परमाणु पुंज जिससे आलोक विच्छुरित हो रहा हो ऐसी रत्नराशि, लप्-लप् करती जिह्वा की भाँति लपलपाती शिखा जो समग्र अन्धकार का ग्रास करना चाह रही हो ऐसी निर्धूम अग्नि।

रानी अचिरा नींद से जागकर राजा विश्वसेन को स्वप्नों से अवगत कराया। सुनकर राजा बोले, इन स्वप्नों के दर्शन से मुझे लगता है तुम्हारे सर्वगुण युक्त त्रिलोक रक्षक एक पुत्र होगा।

दिन में बुलाए गए नैमित्तिकों ने भी यही बात कही। बोले, देव, इन स्वप्नों के दर्शन के फलस्वरूप आपका पुत्र या तो राज्य चक्रवर्ती होगा या धर्म चक्रवर्ती तीर्थंकर होगा। राजा ने यह सुनकर उन्हें पुरस्कृत कर विदा किया। रानी पृथ्वी की तरह पुत्र-रत्न को गर्भ में धारण किए हुए रही।

उस समय कुरुदेश में व्याधि, महामारी आदि के प्रकोप से विभिन्न प्रकार से लोक क्षय हो रहा था। प्रजा ने शान्ति के लिए बहुत से उपाय ज्ञात कर उनका प्रयोग किया किन्तु बड़वानल की तरह वह शान्त नहीं हो रहा था। किन्तु महारानी अचिरा देवी के गर्भ में उत्तम जीव के आगमन मात्र से ही वह शान्त हो गया। कारण तीर्थंकरों के अतिशय की कोई सीमा नहीं होती।

नौ महीने साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर ज्येष्ठ मास की कृष्णा त्रयोदशी के दिन चन्द्र जब भरणी नक्षत्र में था और समस्त ग्रह उच्च स्थान में थे, तब अचिरा देवी ने पूर्व दिशा जैसे मृगलांछन चन्द्र को जन्म देती है वैसे ही मृगलांछन एक पुत्र को जन्म दिया। मुहूर्त्त भर के लिए त्रिलोक में सर्वत्र एक आलोक परिव्याप्त हो गया जिससे नरक के जीवों ने भी पल भर के लिए आनन्द का अनुभव किया।

दिक् कुमारियों का आसन कम्पित हुआ। अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्म अवगत कर वे आनन्दित हुईं। अधोलोक की आठ दिक् कुमारियाँ तीर्थंकर के गृह में आयीं और तीर्थंकर एवं उनकी माता को यथाविधि प्रणाम कर माता को अपना परिचय दिया और डरिए मत ऐसा कहकर घूर्णिवायु से एक योजन तक की भूमि की धूल को दूर किया। फिर जिनेन्द्र और जिनेन्द्र की माता से न अधिक दूर, न अधिक पास खड़े होकर उनका गुणगान करने लगी। ऊर्ध्वलोक से भी पूर्वानुसार आठ दिक् कुमारियाँ

आयीं और वारि वर्षण कर भूमि को स्वच्छ कर वे भी उनकी तरह खड़ी रहकर गीत गाने लगीं। पूर्व रूचक से आठ दिक् कुमारियाँ आयीं और हाथ में दर्पण लेकर जिन और जिन माता को प्रणाम कर पूरब की ओर खड़ी होकर गाने लगीं। दक्षिण रूचक से आठ दिक् कुमारियाँ आयीं और हाथ में स्वर्ण-कलश लेकर अर्हत् और अर्हत् माता को प्रणाम कर दक्षिण दिशा में खड़ी होकर गाने लगीं। पश्चिम रूचक से भी आठ दिक् कुमारियाँ आयीं और जिन एवं जिन माता को प्रणाम कर पश्चिम दिशा में जाकर खड़ी हो गयीं और हाथ में पंखा लेकर उनका गुणगान करने लगीं। उत्तर रूचक से भी आठ दिक् कुमारियाँ आयीं और उन्हें प्रणाम कर हाथ में चँवर लिए उनका गुणगान करती हुई उत्तर दिशा में जाकर खड़ी हो गयीं। मध्यवर्ती कोण से चार दिक् कुमारियाँ आयीं और पूर्व की तरह तीर्थंकर और तीर्थंकर माता को प्रणाम कर हाथ में दीपक लिए गाती हुई मध्यवर्ती कोण में जाकर खड़ी हो गयीं। रूचक द्वीप के मध्य भाग से चार दिक् कुमारियाँ आयीं और उन्हें प्रणाम कर तीर्थंकर की नाभिनाल चार अंगुल रखकर शेष काट दी। तदुपरान्त जमीन में गड्ढा खोदकर जैसे न्यास रख रही हों, इस भाँति उस नाभिनाल को उस खड्डे में रखकर रत्नादि से उसे पूरित कर उसे दूर्वा-घास से आच्छादित कर दिया। सूतिका गृह के पूर्व, उत्तर और दक्षिण में उन्होंने चार चतुःशाल के कदली गृह का निर्माण किया। वे अर्हत् और अर्हत् माता को दक्षिण दिशा के कदली गृह में ले जाकर चतुःशाल के मध्यवर्ती स्थान में रखे रत्नजड़ित स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाया। दिव्य सुगन्धित तेल से उनकी देह-मर्दन की, उनके शरीर पर गन्ध-द्रव्यों का लेपन किया। तदुपरान्त वे उन्हें पूर्व दिशा के कदली गृह में ले जाकर रत्न-सिंहासन पर बैठाया और सुगन्धित जल, फूलों के इत्र और स्वच्छ जल से स्नान करवाया। वे उन्हें दिव्य वस्त्र और अलंकार पहनाकर उत्तर दिशा के कदली गृह में ले गयीं और रत्न-सिंहासन पर बैठाया। आभियोगिक देवों द्वारा क्षुद्र हिम पर्वत से लाए गोशीर्ष चन्दन काष्ट को जलाकर उसकी भस्म को ताबीज में भरा और उन ताबीजों को दोनों के हाथों में बाँध दिया। आप पर्वत की तरह परमायु प्राप्त करें कहकर उन्होंने तीर्थंकर के कानों में दो रत्नमय पत्थर ठोंका और जिन एवं जिनमाता को प्रणाम कर प्रसूति गृह में ले आकर शय्या पर सुला दिया और पास खड़े होकर जातक का गुणगान करने लगीं।

सिंहासन कम्पित होने से शक्र तीर्थंकर का जन्म अवगत कर अनुचरों सहित पालक विमान में बैठकर वहाँ आया। हे रत्नगर्भा, मैं आपको प्रणाम

करता हूँ कहकर उन्होंने तीर्थंकर माता को प्रणाम किया और अवस्वापिनी निद्रा में निद्रित कर उनके पार्श्व में अर्हत् का प्रतिरूप रखकर चार दर्पणों में प्रतिबिम्बित होने की भाँति पाँच रूप धारण किया। एक रूप से उन्होंने प्रभु को गोद में लिया, अन्य दो रूपों से हाथ में चंवर, एक रूप में छत्र और पाँचवें रूप में वज्र धारण कर प्रभु के आगे-आगे चलने लगे। मुहूर्त मात्र में वे मेरु पर्वत स्थित अतिपाण्डुकवला में उपस्थित हुए और प्रभु को गोद में लेकर वहाँ रखे हुए सिंहासन पर बैठ गए। तदुपरान्त अच्युतादि अन्य त्रेसठ इन्द्र मानो पूर्व सूचनानुसार आए हों इस भाँति सिंहासन कम्पित होने के कारण वहाँ उपस्थित हो गये। समुद्र, नदियों एवं सरोवर आदि से लाए जल से अच्युतेन्द्र ने प्रभु को स्नान करवाया। तदुपरान्त अन्य त्रेसठ इन्द्रों ने भी नव जातक को स्नान करवाया। फिर ईशानेन्द्र पांच रूप धारण कर एक रूप से प्रभु को गोद में लिया, अन्य तीन रूप से छत्र चामरादि लेकर पाँचवें रूप में त्रिशूल धारण किए उनके सम्मुख खड़े हो गए। मुहूर्त मात्र में तब शक्र ने प्रभात के निर्मल आलोक-से प्रभु के चारों ओर चार स्फटिक वृष निर्मित किया। मानो फुआँरे से जल निकल रहा है इस प्रकार निर्मल जल उनके सींगों से निकाल कर भगवान का स्नानाभिषेक करने लगे। तदुपरान्त देवदूष्य वस्त्र से उनकी देह पोंछकर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया और दिव्य अलंकार एवं मालाओं से उन्हें विभूषित किया। तत्पश्चात् यथाविधि उनकी आरती कर आनन्द विह्वल होकर निम्नलिखित मंगलकर स्तव पाठ करने लगे :

जो समस्त जगत् के कल्याण कारण हैं, महान् उदार हैं, संसार रूप मरुस्थल के लिए एकमात्र छाया प्रदानकारी वृक्षरूप हैं ऐसे आपको, हे भगवन्, मैं प्रणाम करता हूँ। हे देवाधिदेव, रात्रि संचित पाप कर्मों के लिए ऊषा रूप आपको साक्षात् सौभाग्योदय से ही आज मैंने प्राप्त किया है। हे त्रिलोकनाथ, आपके दर्शन कर आज मेरे नेत्र सार्थक हो गए हैं, उनके हाथ भी सार्थक हुए हैं जिन्होंने हाथों से आपका स्पर्श किया है। एक समय आप विद्याधरों के राजा थे, अन्य समय महर्द्धिक देव थे। कभी आप बलदेव थे तो कभी अच्युतेन्द्र, कभी अवधिज्ञानी चक्रवर्ती तो कभी ग्रैवेयक विमान के अहमिन्द्र। कभी आप मनःपर्यव ज्ञानी राजा थे तो कभी सर्वार्थसिद्धि विमान के अलंकार रूप अहमिन्द्र। हे देवश्रेष्ठ, किस जीवन में आप श्रेष्ठ नहीं रहे? अब तीर्थंकर रूप में जन्म ग्रहण किए आपका गुणगान समाप्त प्राय हो गया है। आपके गुणों का वर्णन करूँ ऐसी क्षमता मुझमें नहीं है। जो भी हो अब

मैं अपनी इच्छा निवेदन करता हुआ कहता हूँ कि आपकी भक्ति मुझे जन्म-जन्म में प्राप्त हो।

इस प्रकार स्तुति कर शक्र इशानेन्द्र की गोद से प्रभु को लेकर शीघ्रतापूर्वक महारानी अचिरा के कक्ष में गए और विधिवत् जातक को उनके पार्श्व में सुला दिया। प्रभु के नेत्रों को आनन्द देने के लिए उन्होंने चन्द्रातप पर श्रीदाम गण्डक को बाँध दिया और देवदूष्य वस्त्र और एक जोड़ा कर्णाभरण उपाधान के पास रख दिया। तदुपरान्त जिनकी आज्ञा अलंघ्य हो, ऐसे शक्र ने देवों द्वारा घोषणा करवाई, यदि कोई हीन उद्देश्य से चाहे वह देव, असुर, मनुष्य कोई भी हो तीर्थंकर और तीर्थंकर माता का अनिष्ट करने की चेष्टा करेगा तो उसका मस्तक अर्जक पुष्प की तरह सप्तधा विभक्त हो जाएगा।

शक्र के आदेश से वैश्रवण ने हस्तिनापुर नगरी में स्वर्ण और रत्नों की वर्षा की। सूर्य जैसे दिन में प्रस्फुटित पद्म की अवस्वापिनी निद्रा हरण कर लेता है उसी प्रकार शक्र ने अर्हत् बिम्ब और अर्हत् माता की अवस्वापिनी निद्रा हरण कर ली। तदुपरान्त तीर्थंकर के लालन-पालन के लिए पाँच धात्रियाँ नियुक्त कर वे नन्दीश्वर द्वीप के मेरु पर्वत पर गए। वहाँ सभी शाश्वत जिनेश्वरों का अष्टाह्निका महोत्सव कर अपने-अपने निवास को लौट गए।

अवस्वापिनी नींद टूट जाने से रानी ने दिव्य गन्ध, वस्त्र और अलंकार सहित स्वपुत्र एवं एक प्रकाश को देखा। उनकी दासियाँ ने उत्साहित और आनन्दमना होकर पुत्र जन्म और दिक् कुमारियों द्वारा किए विभिन्न कृत्यों का वृतान्त राजा को सुनाया। राजा आनन्दित हुए और उन्हें प्रचुर धन दान दिया। फिर महा धूमधाम से पुत्र जन्म का महोत्सव मनाया। जातक जब गर्भ में आया था तब रोग महामारी आदि शान्त हो गए थे अतः उन्होंने जातक का नाम रखा शान्ति। भूख लगने पर अपने अंगुष्ठ में शक्र द्वारा रक्षित अमृत का पान कर एवं धात्रियों द्वारा लालित-पालित होकर वे क्रमशः बड़े होने लगे।

[क्रमशः

संकलन

|| यह साधना है अथवा यातना ? ||

भारत की प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी धर्म-परम्पराओं में साधना की महत्ता का महत्वपूर्ण उल्लेख है। साधना, सिद्धि की उपलब्धि के लिए सर्वमान्य है। साधना का मूल भी यही है। साधना शब्द 'साध्' धातु से निष्पन्न हुआ है। व्याकरण के धातु पाठ में स्पष्टतः उल्लेख है 'राध्-साध्-संसिद्धौ'।

साधना का मूल स्तर मानव का अन्तर्मन है। तदुत्तर वचन है और तदुत्तर काय है। मन के विकारों का परिमार्जन करके अन्तरचेतना के मूल शुद्ध रूप को प्रकाश में लाना ही साधना का हेतु तत्व है। वचन और काया का निग्रह एवं गोपन अथवा सम्यक् प्रवर्तन सब कुछ इसी दिशा की ओर उन्मुख हैं।

साधना के लिए सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् विवेक की शुद्ध ज्योति का प्रकाश आवश्यक है। यदि साधक सम्यक् ज्ञान एवं विवेक का प्रकाश प्राप्त किए हुए है तो उसकी साधना सम्यक् साधना है, अन्यथा वह एक अन्ध परम्परा के पालन के रूप तक ही सीमित हो जाती है और अन्ततः वह गल-सड़कर एक दुर्भाग्यपूर्ण विकृत रूप ले लेती है।

श्रमण भगवान महावीर ने इस तरह की अज्ञान मूलक साधना को बाल चेष्टा के रूप में अभिहित किया है। उनका उपदेश है कि सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् ज्ञान पूर्वक चारित्र ही सम्यक् चारित्र है अर्थात् साधना है। सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् ज्ञान के अभाव में साधना साधना न रहकर, मिथ्या अर्थात् दुस्साधना हो जाती है। वह मुक्ति का हेतु न रहकर संसार भ्रमण की वृद्धि का हेतु बन जाती है।

साधन में अधिकतर तप को महत्व दिया जाता है। भगवान महावीर स्वयं भी साधना काल में अपने युग के एक महान तपस्वी रहे हैं। किन्तु उन्होंने उसी तप को तप माना है, जो सम्यक् ज्ञान मूलक होता है। अतः वे सम्यक् ज्ञान विहीन तप को बाल तप के नाम से सम्बोधित करते हैं। बाल तप कदापि बन्धन मुक्ति का हेतु नहीं होता है। बाल तप से अन्तर चेतना की शुद्धि नहीं होती और जब तक अन्तर चेतना की शुद्धि न हो तब तक साधक संसार-बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता है।

किन्तु खेद है कि उक्त साधना सम्बन्धी सिद्धान्त वचनों पर ध्यान नहीं दिया गया और साधक एक-से-एक उग्र प्रचण्ड तप करते रहे। साधना का समग्र भार एक मात्र शरीर पर लाद दिया गया। जो जितना अधिक अपने शरीर को संतप्त करे, उत्पीड़ित करे वह उतना ही अधिक महान साधक माना जाने लगा। विवेकहीन स्थूल दृष्टि के लोग इस तरह के अज्ञान मूलक उग्र तप करने वाले तापसों के गुणगान में आकाश-पाताल एक करने लगे। साधना की दिशा कुछ और थी और उसे दिशा कुछ और ही दे दी गई। साधना ऊर्ध्वमुखी न रहकर अधोमुखी हो गई।

—उपाध्याय श्री अमरमुनि

अमर भारती || सितम्बर १९९०

|| बालकों में धार्मिक प्रवृति और माता ||

बालक पर प्रारम्भ से ही सबसे अधिक प्रभाव उसकी माता का पड़ता है। प्रायः यह भी कहा गया है कि बालक के संस्कार गर्भ से ही बन जाते हैं। संसार के मनोवैज्ञानिक इस तथ्य का समर्थन करते हैं कि बालक के आचरण, आचार-विचार की नींव माता के गर्भ में ही पड़ जाती है।

माता के साथ-साथ बच्चे पर उसके पिता, अन्य परिवारजनों, मित्रों, सम्बन्धियों और समाज का भी प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक वातावरण बच्चे को प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण पाठशाला और कार्यशाला कही जाती है। जैसे-जैसे बालक बड़ा होने लगता है उस हर उक्त प्रभाव की मात्रा बढ़ती जाती है। किन्तु यदि उसके प्रारम्भिक संस्कार उत्तम पड़ चुके हैं तो वह ही क्रमशः परिपक्व होते चले जाते हैं। बच्चा जिज्ञासु होता है और उसकी प्रत्येक जिज्ञासा को मां साधारण भाषा में समझाती है। करुणा, सहानुभूति, प्रेम, देशभक्ति और घृणा के भाव भी बालक में मां के द्वारा ही भरे जाते हैं। मां के इस योगदान के लिए ही संसार स्त्री के समक्ष नतमस्तक हो जाता है। यही कारण है कि स्त्री को शक्ति कहा गया है जिसके द्वारा समाज का उत्थान और विनाश दोनों ही किए जा सकते हैं।

अतः बालक के निर्माण में मां का सर्वोच्च स्थान है और इस बात को स्पष्ट रूप से समझा और समझाया जाना चाहिये ताकि मानव का उत्थान हो और उसका भविष्य सुरक्षित और सुखमय बन सके।

—डॉ० विद्युत जैन

महावीर मिशन, सितम्बर, १९९०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

कथालोक || अगस्त १९९०

इस अंक में है 'भगवान महावीर का योग और उसका वैज्ञानिक आधार' (निर्मला डोसी), 'अध्यात्म योगी आनन्दघनजी' (सोहनराज कोठारी), 'मूसल में फूल' (डॉ० आदित्य प्रचंडिया), 'अभय योगी मुनि भारमल' (शांता जैन), 'जयाचार्य का ध्यान योग' (मुनि किशन लाल)।

जैन जर्नल || जुलाई १९९०

इस अंक में है 'Jain Theory of Measurement and Theory of Transfinite Numbers' (Navjyoti Singh), 'Omniscient Beings' (Harisatya Bhattacharyya) 'Omniscience a Fiction or a Fact' (G. R. Jain), 'Beginning of Bandha with Special Reference to Jain Philosophy (Kamala Joshi).

तुलसी प्रज्ञा || सितम्बर १९९०

इस अंक में है 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन' (समणी कुसुमप्रज्ञा), 'प्राकृत व्याकरण में प्रयुक्त मध्यवर्ती प और ब की परीक्षा' (डॉ० के० आर० चन्द्र), 'पृथ्वीकाय : एक विवेचन' (डॉ० रज्जन कुमार), 'जैन शास्त्रों में भक्ष्याभक्ष्य विचार' (नन्दलाल जैन), 'त्रिलोकसार का कल्की राजा और यूनानी लेखकों का सैण्ड्राकोटस क्या एक हैं ?' (डॉ० परमेश्वर सोलंकी); 'सुमति तन्त्र का शकराजा और उसका कालमान (प्रतिक्रियाएँ)' (चन्द्रकान्त वाली, उपेन्द्रनाथ राय), 'Theory of Relativity and Space-Time' (Muni Mahendra Kumar), 'New Dimensions in Yoga Philosophy' (Dr. Ratna Purohit), 'Some Problems of Magadhi Dialect' (Jagat Ram Bhattacharyya).

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253

Vol. XIV No. 6 **TITTHAYARA** **October 1990**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73